पवन कुमार

यह उपन्यास अंधेरे में एक रोशनदान की तरह है

"तुम लोग कमज़ोर और डरे हुए लोग हो, इसलिए ही तुम लोगों को विचारों से डर लगता है। तुम मोम के बने हुए पुतले हो, जो विचारों की आग का सामना कर ही नहीं सकते, किसी भी तरह नहीं कर सकते। मोम के सारे पुतले चाहते हैं कि सारे सूरज नष्ट कर दिए जाएँ समाप्त कर दी जाए सारी ऊष्मा, सारी गर्मी, ताकि मोम के पुतलों का साम्राज्य स्थापित हो सके।"

(हाल ही में प्रकाशित "जिन्हें जुर्म ए इश्क़ पर नाज़ था"..... उपन्यास से)*

"कभी ख़लील जिब्रान ने लिखा था कि कहीं कि मैंने जंगल में रहने वाले एक फ़कीर से पूछा कि आप इस बीमार मानवता का इलाज़ क्यों नहीं करते? तो उस फ़कीर ने कहा कि तुम्हारी यह मानव सभ्यता उस बीमार की तरह है, जो चादर ओढ़ कर दर्द से कराहने का अभिनय तो करता है, पर जब कोई आकर इसका इलाज़ करने के लिए इसकी नब्ज़ देखता है, तो यह चादर के नीचे से दूसरा हाथ निकाल कर अपना इलाज करने वाले की गर्दन मरोड़ कर अपने वैद्य को मार डालता है और फिर से चादर ओढ़ कर कराहने का अभिनय करने लगता है। यही कारण है कि कि कोई भी इस मानवता का इलाज़ करने की अब नहीं सोचता है। खलील जिब्रान का कहना था कि सत्य को जानने का प्रयास हमेशा करते रहना चाहिए, लेकिन सत्य को बोलने का काम हमें कभी-कभी ही करना चाहिए। सत्य जानने की चीज़ है बोलने की नहीं है। क्योंकि इस दुनिया को सत्य की आवश्यकता नहीं है। अगर आप सत्य कहने की कोशिश तो एक दिन मारे जाओगे।"

बहुत पहले भगत सिंह ने कहा था कि 'मानव जाति को सबसे ज़्यादा नुकसान धर्म ने पहुँचाया है।' भगत सिंह के इस वाक्य को लेखक पंकज सुबीर ने गाँठ बाँधते हुए इस सूक्ति की तह तक जाने की कोशिश की है। एक सफल विश्लेषक के रूप में उन्होंने इस सूक्ति की गहरे से पड़ताल की है। इस पड़ताल में उन्होंने न केवल हिन्दू बल्कि इस्लाम, यहूदी, ईसाई धर्मों के अन्तस में जाकर

धर्मों के सिद्धान्त एवं व्यवहारिक पक्ष को जानने का प्रयास किया है। धर्मों का इन्सानियत पर क्या प्रभाव पड़ा है, यह जानने के लिए वे एक शोधार्थी की भाँति भारतीय इतिहास से लेकर वैश्विक इतिहास के अथाह समन्दर में गोते लगाते हैं, कुछ सीपियाँ कुछ गुहर ढूँढ़कर किनारे पर लाते हैं। यह किनारा और कोई नहीं उनका उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' है जिसमें उन्होंने विभिन्न किरदारों के जरिए विभिन्न धर्मों की समीक्षा की है, धर्मों की सैद्धान्तिकी के ख़ूबसूरत पक्ष को पाठकों के सामने रखते हुए व्यवहारिक बदसूरती को भी सामने रखा है।

पंकज सुबीर अपने उपन्यास में यह प्रश्न पाठकों के सामने रखते हैं कि क्या कोई अच्छा काम किया है क्या धर्म ने ? ख़ुद ही इस सवाल का उत्तर भी देते हैं कि आदिकाल से वर्तमान तक होने वाले तमाम विभीषिकाएँ... महाभारत, देव-असुर, संग्राम, क्रूसेड, होलाकॉस्ट, दंगे, पहला विश्वयुद्ध, दूसरा विश्वयुद्ध..... ये सब धर्म की ही तो देन हैं। दोनों विश्वयुद्ध बाहर से राजनैतिक दिखते हैं, लेकिन उन दोनों के मूल में धर्म ही है।

पंकज सुबीर का यह तीसरा उपन्यास है। इससे पहले उनके दो उपन्यास 'ये वो सहर तो नहीं' और 'अकाल में उत्सव' अलग-अलग विषयों पर प्रकाशित हो चुके हैं जो पाठकों से लेकर गंभीर अध्येताओं तक सराहे गए हैं। उनका यह तीसरा उपन्यास 'जिन्हें जुर्म ए इश्क़ पर नाज़ था'.... साम्प्रदायिकता से जूझते हुए कथानक में धार्मिक और ऐतिहासिक मान्यताओं पर गंभीर चिंतन और बहस के लिए अपने पाठकों को आमंत्रित करता है। पहले हम उपन्यास की कहानी पर आते हैं। कहानी यह है कि ख़ैरपुर शहर में साम्प्रदायिक दंगा हो जाता है। साम्प्रदायिकता की लपटें यूँ तो पूरे शहर में फैल जाती हैं लेकिन इसका सबसे ज़्यादा प्रभाव एक बस्ती में पड़ता है जहाँ मुस्लिम आबादी बहुसंख्यक की तरह है, पुलिस और प्रशासन तमाम कोशिश मशक़्क़त के बाद बस्ती को अंततः जलाने से बचा लेते हैं। कहानी का सुखांत होता है। उपन्यास के किरदारों में एक अध्यापक रामेश्वर हैं जो अध्यापक हैं, कोचिंग संचालक हैं मगर पैनी निगाह वाले विश्लेषक हैं जो कम्युनिस्ट से नज़र आते हैं (हालांकि लेखक ने ऐसा दावा कहीं नहीं किया है)। एक शाहनवाज़ नामक युवक है, जो रामेश्वर के मित्र का लड़का है जिसे रामेश्वर का आलमोस्ट गोद लिया हुआ लड़का माना

जा सकता है। कहानी की गति को बढ़ाने के लिए एक कलेक्टर है, एक एस.पी.है, एक एस.एस.पी. भी है और साथ में आवश्यकतानुरूप कुछ पार्ट-टाईम किरदार भी हैं।

जिस क़स्बे में कहानी घटती है वह कहने को तो एक ज़िला है मगर वास्तव में नाम का ही ज़िला है। रामेश्वर इस क़स्बे में एक कोचिंग सेण्टर चलाता है। यह कोचिंग सेण्टर इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश-परीक्षा की तैयारी कराता है, जिसमें वह स्नातक एवं स्नातकोत्तर के छात्रों को गणित पढ़ाता है। रामेश्वर का एक दोस्त है शमीम जो शहर के जरा बाहर एक नई बस्ती में रहता है। शमीम का एक अठारह वर्षीय पुत्र भी है शाहनवाज़। शमीम जिस बस्ती ख़ैरपुर में रह रहा है, वह दंगों के बाद बसी है। अब यह बस्ती कट्टर विचारों का पोषण करने वाली बस्ती है। चूँकि एक ही धर्म के लोगों की बस्ती है, इसलिए इस प्रकार के विचारों का फलना-फूलना आसानी से होता है। इस बस्ती के कम उम्र के लड़कों के सीने में नफरत पैदा की जाती है। जिनके सीने में वह नफ़रत नहीं भी होती है, उनको बरसों पहले हुए उस दंगे की कहानियाँ सुनाई जाती हैं। उस क्रूरता की कहानी सुनाई जाती थी, जिसको वहाँ से विस्थापित होने से पूर्व इन लोगों ने झेला था। ये कहानियाँ ज़ाहिर-सी बात है अतिरंजित होती हैं। इनमें तस्वीर को बहुत भयावह बना कर प्रस्तुत किया जाता है। इसी कारण होता यह है कि सुनने वाले के दिल में दूसरे धर्म के प्रति नफ़रत भर जाती है। बहरहाल शमीम की चिंता यह थी कि शाहनवाज़ आवारा लड़कों की संगत में बिगड़ रहा है। इसलिए वह अपने लड़के को रामेश्वर को सौंप देते हैं ताकि वह सुधर सके। शाहनवाज़ रामेश्वर के ऑफ़िस में काम करने लगता है।

समय और बीतता जाता है। शाहनवाज़ को रामेश्वर के साथ आए हुए सात-आठ साल हो जाते हैं। अब वो पच्चीस-छब्बीस साल का युवक है। शाहनवाज़ स्नातक के बाद क़ानून की डिग्री और क़ानून में ही स्नातकोत्तर एल.एल.एम. भी कर चुका है और अब रामेश्वर के दबाव में पी.ऍचडी. कर रहा है। शाहनवाज़ एल.एल.एम. के बाद वक़ील के रूप में अपनी प्रैक्टिस प्रारंभ करना चाहता है, लेकिन रामेश्वर का कहना है कि पढ़ाई का सिलसिला जब तक क्रम में है, तब तक उसे पूरा कर लेना चाहिए, बाद में इस टूटे हुए सिलसिले को शुरू करने का अवसर ही नहीं मिलता है। पी.ऍचडी. अभी हो गई तो हो भी

जाएगी, बाद में वक़ालत के कारण इसके लिए समय नहीं मिलेगा और ज़िंदगी भर इस बात का अफ़सोस रहेगा। अब शाहनवाज़ कोचिंग सेण्टर में प्रमुख भूमिका में आ चुका है। लगभग पूरा काम अब वही सँभाल रहा है। साल-डेढ़ साल पहले शाहनवाज़ की शादी भी हो चुकी है। उसकी पत्नी हिना की डिलीवरी का समय आ चुका है। ऐसे में ख़ैरपुर में अचानक एक रोज़ दंगा हो जाता है। दंगे की वजह भी अजीब सी होती है। ख़ैरपुर में शाम के बाद भी कुछ लड़के मंदिर पर तेज़ आवाज़ में डीजे बजा कर नाच रहे थे। ख़ैरपुर के कुछ बुज़ुर्ग लोगों ने जाकर मना किया, तो उनके साथ भी बहुत बदतमीज़ी की। बस इस बात पर यहाँ बस्ती के लड़कों को ग़ुस्सा आ गया, उन्होंने जाकर डीजे को तोड़-फोड़ दिया और उन लड़कों की भी ख़ूब पिटाई कर दी। पिटे हुए लड़के भागते हुए, चिल्लाते हुए क़स्बे चले गए। आधा-एक घंटे तक तो शांति रही फ़िर क़स्बे से भीड़ की भीड़ मोटरसाइकिलों पर, जीपों में आ गई चीखती-चिल्लाती हुई और आकर पूरे ख़ैरपुर को चारों तरफ़ से घेर लिया।

जनवरी के पहले सप्ताह में कड़ाके की ठंड के दौरान ख़ैरपुर नाम की यह छोटी सी बस्ती आतंक के साये में घिर जाती है। दंगाई भीड़ के दबाव को पुलिस और प्रशासन के अधिकारी उपलब्ध पुलिस फ़ोर्स के साथ रोकने की कोशिश में लगे हुए हैं। इस समय प्रशासनिक अधिकारी विपरीत परिस्थिति को रोकने में लगे हैं। इन अधिकारियों में वरुण कुमार व विनोद सिंह जैसे युवा प्रशासनिक अधिकारी मौके पर मौजूद हैं। इन अधिकारियों के पास पुलिस फ़ोर्स कम उपलब्ध है और वे बाहर से आ रही पुलिस फ़ोर्स की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इस कथानक को बुनते हुए पंकज सुबीर दंगे के मूल कारण पर जाते हैं और वे पाते हैं कि धर्म की कट्टरता ही इसका मूल है। धर्म की व्याख्या करते हुए लेखक कहता है कि जीवन जीने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा धर्म ही होती है। जो कुछ भी आप करना चाहते हैं, जिसमें भी आपको सुख मिलता है, वह आप नहीं कर सकते क्योंकि ऐसा करने में धर्म की मनाही है। धर्म की कैंची सबसे पहले हमारे पंख काट देती है। उसके बाद हम आसमान को केवल देख ही सकते हैं, उसमें उड़ नहीं सकते। यह धर्म द्वारा मानवता के साथ की गई सबसे बड़ी हिंसा है। धर्म किसी अफ़ीम की तरह होता है, हमें एहसास ही नहीं होने देता है कि जो कुछ भी हम कर रहे हैं, वह हम अपने मन से नहीं कर रहे,

बल्कि किसी नशे की गिरफ़्त में आकर कर रहे हैं।

दुनिया में प्रचलित अनेकानेक धर्मों की पड़ताल करते हुए वे कहते हैं कि धर्म कोई भी हो पहले वह एक धर्म की शाखा के रूप में जन्म लेता है और फिर ख़ुद ही धर्म बन जाता है। हिन्दू, यहूदी, ईसाई और इस्लाम की ऐतिहासिक मीमांसा इस उपन्यास की बेजोड़ प्रस्तुति है जिसमें वाकई लेखकीय श्रम दिखता है। इस श्रम की एक मिसाल देखिए.... दुनिया के तीन प्रमुख धर्मों यहूदी, ईसाई और इस्लाम की बात करें, तो तीनों ही इब्राहिम को अपना पितामह मानते हैं। इब्राहिम, जिन्हें अब्राहम या अबराम भी कहा जाता है। अबराम पृथ्वी के पहले पुरुष आदम की उन्नीसवीं पीढ़ी और जल प्रलय के समय जीवन को बचाने वाले नोह या नूह की दसवीं पीढ़ी थे। अबराम की आने वाली नस्लों ने ही ये तीनों प्रमुख धर्म बनाए। तीनों धर्म, जो आज एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हैं। अबराम के एक पुत्र इशाक़ के बेटे याकूब जिसका नाम जैकब या इसराइल भी था, ने यहूदी धर्म की स्थापना की। जैकब के पोते मूसा या मोसेस ने यहूदी धर्म को इसराइल में ले जाकर स्थापित किया। बाद में दाऊद जिसका नाम डेविड भी है और उनके बेटे सुलेमान ने इस धर्म को ऊँचाईयाँ प्रदान की। दाऊद की ही बहुत बाद की अगली किसी पीढ़ी में जीसस या ईसा आये जिनके नाम पर ईसाई धर्म बना। अबराम के दूसरे पुत्र इस्माइल की बहुत आगे की किसी पीढ़ी में मोहम्मद हुए, जिन्होंने इस्लाम की स्थापना की। कितना उलझा हुआ लगता है न सुनने में ये सारा मामला? अब ये जो अबराम है, इनका नाम हिन्दुओं के राम से भी बहुत मिलता है, और अब्राहम को जब रोमन लिपि में लिखा जाता है, तो उसमें से ए अक्षर यदि हटा दिया जाए, तो जो बचता है वह ब्रह्मा जैसा कुछ होता है...... ईसा, मूसा और मोहम्मद के नाम पर एक शहर कितने बरसों से ख़ून की होली खेल रहा है। यहूदी कट्टरपंथियों रब्बियों के कहने पर रोम गवर्नर पिलातुस ने ईसा को सलीब पर लटका दिया, ये पैदा हो रहे धर्म का स्थापित धर्म का विरोध था। बाद में उन्नीस सौ वर्ष बाद एक रोमन कैथोलिक एडोल्फ़ हिटलर ने साठ से अस्सी लाख यहूदियों को मार कर ईसा का बदला ले लिया। हालाँकि हिटलर की धार्मिक मान्यताओं को लेकर विवाद होता रहा है, लेकिन सच यही है कि वो रोमन कैथोलिक चर्च में 'बेप्टाइज़्ड' भी हुआ था और बाद में उन्नीस सौ चार में ऑस्ट्रिया के रोमन कैथोलिक चर्च में उसका

'कन्फ़र्मेशन' भी हुआ था। लेकिन वो इस मामले में ईसाइयों का भी विरोध करता था कि ईसाई यहूदी मान्यताओं को मानते थे। नाज़ियों और हिटलर का मानना था कि ईसा मसीह असल में यहूदी नहीं थे, वे शुद्ध आर्य रक्त थे। इस लिये हिटलर की नाज़ी पार्टी का निशान भी आर्यों का निशान स्वास्तिक ही था ..... ईसा को छोड़कर कोई ऐसा पैग़म्बर या अवतार नहीं मिलता, जिसने युद्ध के नाम पर जमकर हिंसा नहीं की हो। ईसा के मानने वालों ने इस दुनिया को सबसे ज़्यादा हिंसा के घाव दिए। इस सबको जस्टीफ़ाई करने के लिए कोई उसे धर्मयुद्ध कहता है, कोई होली वॉर कहता है, कोई जिहाद कहता है..... लेकिन यह सारे शब्द असल में धर्म के नाम पर हो रही हिंसा का औचित्य स्थापित करने के लिए हैं। धर्म का नाम लेकर इन्सानों की हत्या करने के लिए हैं। मज़े की बात यह है कि लड़ाई में उतरे दोनों पक्ष यह सोचते है कि वे धर्म के लिए लड़ रहे हैं। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए लेखक हिन्दू धर्म की मीमांसा करते हुए कहता है कि हिन्दू तो अभी तय ही नहीं कर पा रहा है कि वह है क्या .... आर्य या अनार्य? क्योंकि अगर वह आर्य है, तो वेदों को मानना होगा और अगर वेदों को मानना है, तो मूर्ति पूजा छोड़नी होगी। हिन्दू कट्टर तो होता है, लेकिन उसे ख़ुद को ही पता नहीं है कि वो कट्टर किस विषय पर हो? शिव को लेकर या विष्णु को लेकर हो? कुछ वर्षों पहले तो शैव और वैष्णव के बीच भी इस प्रकार के झगड़े होते थे, जैसे यह दो अलग धर्म हों। वह किस किताब को अपना अन्तिम सत्य मानकर चलें? शायद यही कारण रहा कि बरसों-बरस से हिन्दू शब्द अपना सही अर्थ खोजे जाने की प्रतीक्षा कर रहा है। जो मौलाना आज़ाद कहते थे कि अगर बात हिन्दू शब्द की हो रही है तो मैं भी हिन्दू ही हूँ। हम सब जो इस उपमहाद्वीप में रह रहें हैं हम सब हिन्दू ही हैं। मगर यदि धर्म की बात करें, तो हिन्दू अभी-भी बहुत उलझन में ही है। उलझन में है कि वह माने किसे? चार वेद से, चार वेदों से ही उत्पन्न हुए एक सौ आठ उपनिषद, संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक। उसमें यह भी विवाद है कि चौथा वेद अथर्ववेद तो वेद है ही नहीं। फिर उसके बाद आते हैं पुराण। वेदों का काल यदि चार से पाँच हज़ार साल पुराना है, तो पुराणों को हज़ार से दो हज़ार साल पुराना। कुछ पुराणों में तो मौर्य और गुप्त वंश के राजाओं के नाम मिलते हैं। वेदों में मूर्ति पूजा नहीं है, मगर पुराणों में मूर्ति पूजा ही है। पुराणों के देवी-देवता,

वेदों के देवी-देवताओं से बिल्कुल अलग है। अट्ठारह पुराण और चैबीस उप पुराण। हर पुराण किसी एक देवता को ही प्रधान सिद्ध करता है। इतना सब कुछ है कि हिन्दू के पास धर्म के नाम पर बहुत बड़ा कन्फ़्यूज़न है। वह किसे माने और किसे नहीं माने? किस पुस्तक को अन्तिम पुस्तक मानकर चले। फिर उसके बाद महाभारत, गीता, राम चरित मानस, रामायण। पुस्तकों में एक-दूसरे के प्रति विरोधाभास भी देखने को मिलते हैं, जो हिन्दू की समस्या को और बढ़ा देते हैं।

बहरहाल इस उपन्यास को पढ़ते वक़्त पाठकों को धर्म विषयक इस प्रकार के तार्किक सवाल जबाव लगातार मिलते रहेंगे।

लेखक सिर्फ़ सवाल ही खड़े नहीं करता वह प्रतीकों के माध्यम से समाधान भी देने की कोशिश करता है। लेखक यह सुझाव भी देता है कि देश का स्वरूप कैसा होना चाहिए। लेखक की दृष्टि में भारत में इस्लाम कैसा होना चाहिए, यह बात केवल सूफ़ी संतों ने समझी, लेकिन उन सूफी संतों का संदेश ही मुसलमान नहीं समझ पाए। मुसलमानों ने अपना आदर्श सूफ़ी संतों को न बनाकर आक्रमणकारी योद्धाओं को बनाया। काश कि उन्होंने अमीर ख़ुसरो जैसों को समझ लिया होता।

किसी महत्त्वपूर्ण मोड़ पर जब यह सवाल उठता है कि हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के बीच जो टकराव हैं, वो कब तक जारी रहेंगे। लेखक यह समझाने की कोशिश करता है कि दोनों धर्मों को टकराव की समस्या को हल करने का मौका मिला था। कुछ लोग दाराशुकोह और महात्मा गाँधी सरीख़े आए थे इन दोनों के पास। ये लोग चाहते थे कि सब कुछ बदल जाए। यह दोनों धर्म एक-दूसरे के पास-पास आ जाएँ। यह लोग इंतज़ार करते रहे इन दोनों के बदलने का, लेकिन हर कोई एक निश्चित उम्र लेकर आता है, कब तक इंतज़ार करता? वैद्य भी जब आता है, तो उसे अपना रोग तो बताना ही पड़ता है न कि हमें क्या हो रहा है? और फिर ठीक होने की मानसिकता भी बनानी पड़ती है। गाँधी और दाराशिकोह आए थे इनको ठीक करने; मगर तुम यह भी देखो कि इस भारतीय उपमहाद्वीप में दाराशुकोह से लेकर गाँधी तक कुछ भी नहीं बदला। एक दाराशुकोह जो मुसलमान था और जिसने दोनों धर्मों को पास लाने की कोशिश की, तो उसकी हत्या मुस्लिम कट्टरवादी ताक़तों ने कर दी। दूसरे गाँधी, जो

हिन्दू थे और जिन्होंने एक बार फिर दोनों धर्मों को पास लाने की कोशिश की, उनकी हत्या हिन्दू कट्टरवादी ताक़तों ने कर दी। मतलब यह कि हत्या दूसरे पक्ष ने नहीं की, अपने ही पक्ष ने की। फिर आप कैसे कह सकते हो कि इन दोनों धर्मों के लोगों के बीच भाईचारा हो सकता है? यहाँ तो रोगी ही तैयार नहीं थे, और कितने ही वैद्य-हक़ीम इनको ठीक करने, इनके मर्ज का इलाज करने के लिए आए भी, इंतज़ार भी किया और चले भी गए-

तिरी कज-अदाई से हार के शब-ए इंतिज़ार चली गई
मिरे ज़ब्त-ए-हाल से रूठ कर मिरे ग़म-गुसार चले गए
न सवाल-ए-वस्ल न अर्ज़-ए-ग़म न हिकायतें न शिकायतें
तिरे अहद में दिल-ए-ज़ार के सभी इख़्तियार चले गए......

वह गाँधी, जिसने अपना सब कुछ देश को समर्पित कर दिया, उससे यह देश आज़ादी के सत्तर साल में ही इतनी नफ़रत क्यों करने लगा है। गाँधी क्या केवल एक व्यक्ति थे, जिनकी हत्या के साथ ही गाँधी को समाप्त हो जाना था। गाँधी के जिस विचार का पूरी दुनिया में सम्मान किया जाता है, स्वयं गाँधी के अपने ही देश में उन गाँधी की क्या स्थिति है। तभी तो लेखक को क्षुब्ध होकर कहना पड़ता है कि गाँधी को सत्तर साल पहले नहीं मारा था, असल में तो गाँधी की हत्या अब हो रही है। गाँधी की पूरी विचारधारा को अब समाप्त किया जा रहा है। अहिंसा अब जाकर हिंसा के हाथों मारी जा रही है। गाँधी जोड़ना चाहते थे। गाँधी अगर कुछ दिन और जी लेते तो शायद एक बार फिर जोड़ भी देते, मगर तोड़ने वाले एक बार फिर से जीत गए। सुकरात से ईसा और ईसा से गाँधी तक, होता यही आया है कि जब विचारों को मारना असंभव हो जाता है, तो उस व्यक्ति की हत्या कर दी जाती है। मारने वाले भूल जाते हैं कि व्यक्ति को मारने से विचार नहीं मरता। विचार तो कभी मर ही नहीं सकता।

पाकिस्तान बन जाने के बाद भी जो मुसलमान यह देश छोड़कर वहाँ नहीं गए, वह सब हमारे भरोसे पर यहाँ रुक गए थे। इस भरोसे पर कि कुछ भी हुआ तो हम उनको बचाएँगे। अब ये हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम इस भरोसे को बचा कर रखें। हमारे अपने ही कुछ लोग हमें इस भरोसे को तोड़ देने के लिए उकसाते हैं, लेकिन तोड़ने वालों को कभी याद नहीं रखा जाता, जोड़ने वालों को याद रखा जाता है।

धर्म को लेकर जो मौजूदा हालात हैं उनमें एक प्रज्ञापुरुष अपने आपको किस तरह लाचार-असहज महसूस करता है, उसका मिश्रण लेखक ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। उपन्यास का नायक रामेश्वर एक स्थान विशेष पर आकर महसूस करता है कि वह विचित्र-सी थकान महसूस कर रहा है। ऐसा लग रहा है कि जैसे युगों से जाग रहा है वो। युगों से चल रहा है एक अँधेरी रात में, जो समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही है। उसे लगता है कि उसके सिर पर काँटों का ताज रख दिया गया है और कंधे पर सलीब है, जिसे लेकर वह यरूशलम के विआ डोलोरोसा पर गुज़र रहा है। चला जा रहा है उस रास्ते पर, जहाँ बस चौदह स्थानों पर ही रुकने की इजाज़त है उसे। सिर पर काँटों के ताज से बहता हुआ ख़ून महसूस हो रहा है उसे। या वह मूसा की तरह अपने पीछे बहुत से भूखे और दुखी ग़ुलाम लोगों का क़ाफ़िला लिए चला जा रहा है इजिप्ट से इज़राइल की तरफ़। इज़राइल जो उसके लोगों की मातृभूमि है। अपने पीछे चल रहे लोगों की कराहें सुनाई दे रही हैं उसे... और सुनाई दे रही हैं पीछे आती हुई फ़िरऔन रामसेस की सेना की आवाज़ें। लाल सागर को पार करने के लिए उसने अपनी लाठी हवा में उठाई है। लाल सागर के उस तरफ़ शिनाई पर्वत को पार करता हुआ वह चलता ही जा रहा है। उसकी यात्रा समाप्त नहीं हो रही है। चालीस वर्षों से चलता ही जा रहा है कि अपनी मातृभूमि पर पहुँच सके। पीछे छूट रहे हैं कपिलवस्तु, लुम्बिनी, यशोधरा और राहुल....... साथ में आ रहे हैं प्रश्न जरा, रोग और मृत्यु के। दूर.... बहुत दूर दिखाई दे रहा है एक वृक्ष.....बोधि वृक्ष..... जिसके नीचे सारे प्रश्नों के उत्तर हैं। वह चलता ही चला जा रहा है..... मेसोपोटामिया.....बेबीलोन से निकल कर जा रहा है वो येरूशलम की ज़मीन की तरफ़। सीरिया के रेगिस्तान को पार करता हुआ। पीछे छूटता जा रहा है टॉवर ऑफ बेबीलोन और स्वघोषित ईश्वर नमरूद। चला जा रहा है किसी नए शहर की तलाश में। मगध नरेश जरासंध के अठारह बार के हमलों के बाद अपने पूरे वंश को साथ लिए चला जा रहा है वो मथुरा से पश्चिम की दिशा में, किसी उजाड़ पड़ी नगरी कुशस्थली के स्थान पर नए सिरे से द्वारका नाम के शहर को बसाने। चला जा रहा है अपनी पीठ पर रणछोड़ का ख़िताब लगाए। सत्रह युद्ध लड़ने के बाद अठारहवें युद्ध से भागता हुआ। मक्का से हिजरत करते हुए अपने लोगों के साथ बढ़ा जा रहा है मदीना की ओर,

मक्का में बार-बार होने वाली हिंसा से अपने लोगों को बचाने के लिए। हिजरत जो पुरख़ों से लेकर आज तक हर उस शख़्स के हिस्से में आती है, जो रास्ता बदल कर चलने को कहता है। अपने पीछे वह किसी पागल सनकी हत्यारे के पैरों की आहट सुन रहा है। वह हत्यारा जिसने उसके कई लोगों को गैस चैम्बर में बंद कर-कर के मार डाला है। वह बच कर निकला है एक बार फिर उसी मातृभूमि की ओर जहाँ उसके आदम पुरखे मूसा ने उसे पहुँचाया था। अपने लाखों लोगों को खो देने का दुख अपने मन में लिए वह लौट रहा है वापस पश्चिम से पूर्व की तरफ़। उससे कहा गया है कि वह अपने लोगों को लेकर एक बार फिर से अपनी मातृभूमि को ही लौट जाए। वह दिल्ली की सड़कों पर जा रहा है, जा रहा है एक हाथी पर बैठा हुआ। उसके कपड़े फटे हुए हैं। उसे ले जाया जा रहा है उसका सर कलम करने के लिए। उसने दूसरे धर्मों के ग्रंथ पढ़ने का अपराध किया है। उसका अपना भाई उसे इस प्रकार सज़ा देकर सड़कों पर घुमा रहा है। उसका पिता दूर आगरा में यमुना के किनारे सोया हुआ है। वह बहुत बूढ़ा हो गया है और थके हुए, बोझिल क़दमों से बढ़ रहा है अपनी रोज़ की प्रार्थना सभा की ओर। सुन रहा है अपने ही विरोध के वह नारे, जो रास्ते में उसके अपने ही लोग लगा रहे हैं। वह लोग, जिनके लिए उसने अपनी पूरी ज़िन्दगी समर्पित कर दी, आज वही सब उसके विरोध में खड़े हुए हैं। वह आते हुए देख रहा है उन तीन गोलियों को, जो उसके बूढ़े शरीर को लक्ष्य कर दागी गई हैं। दागी गई हैं किसी अपने के ही द्वारा। ऐथेंस के कारागृह में बैठा हुआ देख रखा कि एक प्याला है, जो ज़हर से भरा हुआ है। उसके अपने लोग चाहते हैं कि वह वहाँ से भाग जाए, नहीं पिए उस प्याले को। मगर उसे उस प्याले की तरफ़ एक तीव्र आकर्षण महसूस हो रहा है। वह उसे उठाकर अपने होठों से लगा रहा है। एक लकीर है, जो कहीं क़ागज़ों पर खींच दी गई है। जिसे रैडक्लिफ़ लकीर कहा जा रहा है। वह हज़ारों लोगों के क़ाफ़िले में शामिल होकर इस लकीर के उस तरफ़ जा रहा है। उसके साथ हैं ख़ून से लथपथ लोग, हारे-थके-भूखे, अपना सब कुछ छोड़कर चले जा रहे हैं। इसी प्रकार के लोग उस तरफ़ से भी चले आ रहे हैं, जिनको लकीर के उस तरफ़ से इस तरफ़ आने के लिए कहा गया है। एक-से ही लोग हैं, चमड़ी, रंग, क़द सब एक सा ही है, मगर फिर भी आदेश है कि इस तरफ़ से उस तरफ़ और

उस तरफ़ से इस तरफ़ चला जाया जाए। औरतें हैं, जिनकी इज़्ज़तें लुट गईं हैं, मगर अब वे केवल जीने के लिए चल रही हैं। जो कुछ था, उस सब को छोड़कर निकल पड़े हैं यह लोग। एक सफ़र है, जो जाने कितने युगों से ऐसे ही चला आ रहा है। एक ईश्वर है, जो कई नामों से छल रहा है, कभी भी दिखाई नहीं देता। कभी सामने नहीं आता। कभी भी संकेत नहीं प्रदान करता है कि वह है। किसी दिशा में ईश्वर के होने की सूचना पाकर वह कुछ अधिक गति से दौड़ता है, लेकिन वहाँ जाकर देखता है कि आभूषणों से सजा हुआ एक राजा है, जिसने अपने आपको ईश्वर घोषित कर रखा है। उसके आस-पास कुछ लोग हैं, जो किताबें लिख रहे हैं उस राजा के ईश्वर होने की, ताकि सदियों तक कहा जा सके कि यह राजा ईश्वर था। ईश्वर उसे किसी पहाड़ पर बुलाता है मगर वहाँ भी उसे ईश्वर नहीं मिलता, कुछ झाड़ियों में आग लगी हुई मिलती है और कहा जाता है कि यही ईश्वर है। ईश्वर सीधे सामने नहीं आ सकता, इसलिए वह इस प्रकार सामने आ रहा है। अलग-अलग धर्मों में, अलग-अलग तरीक़े से प्रार्थना करते हुए, अलग-अलग तरीक़े से कपड़े पहन कर वो ईश्वर की तलाश में दौड़ता ही जा रहा है। ईश्वर कहीं नहीं है मगर उसके बाद भी उसकी तलाश में या किसी एक ईश्वर से डर कर, भाग कर किसी दूसरे ईश्वर वाले लोग एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ चले जा रहे हैं। चले जा रहे हैं और उनके पीछे ईश्वर का प्रतिनिधि धर्म नंगी तलवारें लिए दौड़ रहा है। जो थक कर गिरते हैं, वे उस धर्म की तलवार की चपेट में आ जाते हैं। जो छूट रहे हैं, गिर रहे हैं, वे लोग शायद वही हैं, जिनके बारे में सारे धर्मग्रन्थों में कहा गया है अपने पापों को कम करने के लिए पशुओं की कुर्बानी प्रदान करो, पशुओं की बलि दो। धर्म अब पशुओं से ऊब कर इन्सानों की बलि ले रहा है। और हिजरत है कि समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही है। पाँच हज़ार सालों से एक अनवरत हिजरत है, जो मुसलसल जारी है, और जिसका कोई अंत दिख ही नहीं रहा है।

लेखक ने इस उपन्यास में अपने पात्रों को पूरी आज़ादी दी है कि वे अपना पक्ष पाठकों के सामने बेबाक़ी से रखें और अंतिम निर्णय पाठकों को ही करने दें। इस क्रम में लेखक क्रमशः गाँधी, नाथूराम गोडसे और जिन्ना के हवाले से ख़ुदबयानी एक नया प्रयोग सा लगता है। लेखक ने इतिहास के तमाम अनछुए पहलुओं को उजागर करने में अपनी विद्वता का ज़बरदस्त परिचय दिया है।

हैरानी होती है जब जिन्ना के हवाले से लेखक कहता है कि असल में दो देशों का जन्म हिन्दू और मुसलमान के बीच के झगड़े के कारण नहीं हुआ, असल में तो यह हुआ केवल दो लोगों के ईगो के टकराने के कारण, मोहम्मद अली जिन्ना और मोहनदास करमचंद गाँधी के ईगो टकराने के कारण।

बकौल जिन्ना मेरे मन में गाँधी द्वारा किए गये अपमान की आग भरी हुई थी। और उस अपमान का बदला लेने के लिए ही मैं मुसलमानों का नेता बन गया। उन्हीं मुसलमानों का, जिनके कारण मुझे कांग्रेस छोड़नी पड़ी थी। मैं कांग्रेस से मुसलमानों को दूर करना चाहता था। मैंने उसी अलग पाकिस्तान का सपना मुसलमानों को दिखाना शुरू कर दिया, जिसको उन्नीस सौ तैंतीस में रहमत अली द्वारा रखे जाने पर मैंने एक 'असंभव सपना' कह कर नकार दिया था। मेरे लिए कांग्रेस का मतलब बस गाँधी ही था। उस एक बात का बदला लेने के लिए मैं किसी भी हद तक जा सकता था। और उसी कारण मैं जो ठीक से मुसलमान भी नहीं था, मुसलमानों का सबसे बड़ा लीडर बन गया। मेरे लिए वही सबसे सुविधाजनक स्थिति थी। मुसलमानों में पढ़े-लिखे लोगों का अकाल था, मेरे लिए वहाँ लीडरशिप करना और वहाँ रहकर कांग्रेस को परेशान करना ज़्यादा कम्फ़र्टेबल था। मुस्लिम लीग में मेरा निर्णय पत्थर की लकीर की तरह होता था। वह मैं ही था, जिसने कांग्रेस के सहयोगी दल के रूप में काम करने वाली मुस्लिम लीग को कांग्रेस के बराबर ताक़त वाली पार्टी बना कर खड़ा कर दिया था। पार्टियाँ लीडरशिप से चलती हैं, कार्यकर्ताओं से नहीं। मैं मुस्लिम लीग में बादशाह की स्थिति में था। हाँ यह भी सच है कि मैं अगर चाहता, तो विभाजन रोक सकता था। मुस्लिम लीग मेरे इशारे पर नाचती थी। मैंने एक बार ऐसा सोचा भी था, माउण्टबेटन ने जब भारत और पाकिस्तान का प्रस्ताव अंतिम रूप से मेरे सामने रखा था, तो मैंने पहली बार उस पर दस्तख़त नहीं किए थे। मैं ठहर गया था। लोग समझते हैं कि मैं हिन्दू विरोधी था, नहीं...... मैं तो धार्मिक ही नहीं था, तो किसी धर्म का कैसे विरोधी होता। मैं मुसलमानों का एक राजनैतिक नेता था, धार्मिक नेता नहीं था। मैं तो कांग्रेस का विरोधी था। कांग्रेस का विरोधी इसलिए था क्योंकि मैं गाँधी का विरोधी था। पाकिस्तान मैंने बनाया, जिन्ना ने बनाया, पाकिस्तान किसी मुस्लिम लीग ने नहीं बनाया। मैंने अपने स्टेनोग्राफ़र के साथ मिलकर बनाया। हम दो ही थे ज़िम्मेदार उसके लिए। मैंने

ही धीरे-धीरे मुस्लिम लीग को कट्टर करना शुरू किया। पाकिस्तान मैंने आख़िरकार बनवा दिया लेकिन मैंने तो बनते ही कह दिया था कि पाकिस्तान मजहबी मुल्क नहीं होगा। मैं इस्लामिक दुनिया को बताना चाहता था कि मुसलमान भी धर्म निरपेक्ष हो सकते हैं। हिन्दू अपने मंदिरों में जाएँगे, मुसलमान अपनी मस्जिदों में जाएँगे। मैं तो चाहता था कि भारत और पाकिस्तान के बीच वह रिश्ता बन सके, जो अमेरिका और कैनेडा के बीच है। आपको शायद मालूम नहीं होगा कि मैं सात अगस्त सैंतालीस को जब कराँची पहुँचा तो मैंने रेडिया लाहौर के अफ़सरों को नए बनने वाले पाकिस्तान के क़ौमी तराने या राष्ट्रगान के लिए किसी हिन्दू को तलाश कर उससे लिखवाने की बात कही थी और आज़ाद पाकिस्तान का पहला क़ौमी तराना 'ऐ सरज़मीने पाक' किसी मुसलमान ने नहीं बल्कि जगन्नाथ आज़ाद ने लिखा था। मेरी मौत के बाद उसे बदल दिया गया और हफ़ीज़ जालंधरी से दूसरा लिखवा लिया गया। मैं तो चाहता था कि पाकिस्तान कट्टरपंथी देश नहीं बने, लेकिन मेरे चाहने से क्या होना था। मैं चाहता था कि पाकिस्तान मुसलमानों का देश हो, मगर इस्लामिक देश नहीं हो। पाकिस्तान दुनिया का पहला मुस्लिम देश बने जो धर्म निरपेक्ष भी हो। लेकिन इसमें मेरे सोचने से कुछ नहीं होना था। पाकिस्तान की पैदाइश ही धर्म के आधार पर हुई थी, तो आख़िरकार उसे कट्टर हो ही जाना था।

दंगों के दौरान प्रशासन की भूमिका और मनोदशा का आकलन लेखक ने बहुत शानदार तरीक़े से किया है। लेखक बड़ी ख़ूबसूरती से यह कहता है कि दंगों की स्थिति में जब पुलिस और प्रशासन के मन में भी कुछ पूर्वाग्रह आ जाते होंगे, तब कितना मुश्किल होता होगा दूसरे पक्ष के लिए। यहाँ तो वरुण कुमार जैसा अधिकारी है, जो ख़ैरपुर बस्ती में दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को बचाने के लिए मोर्चे पर डटा हुआ है लेकिन जहाँ अधिकारी ही बायस्ड हो जाते होंगे, वहाँ क्या होता होगा ? कितना भयावह होता होगा न कि जब दंगे में घिरा हुआ एक पक्ष सुरक्षा के लिए सरकारी मदद के आने की प्रतीक्षा कर रहा होता हो और पता चले कि मदद को आए सरकारी लोग भी दूसरे पक्ष के समर्थक निकलें।

लेखक ने इस उपन्यास में इतिहास की उन घटनाओं को भी प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया है जिन पर बहुत कम या बहुत ज़ियादा लिखा -पढ़ा तो गया है मगर उनसे सबक नहीं लिया गया है। उदाहरण के तौर पर जिन्ना के मरने के

वक़्त एम्बुलेंस में डीज़ल ख़त्म हो जाना, संत नामदेव के अभंग का पुनर्पाठ, विभाजन की पीड़ा, छियालीस - सैंतालीस के दंगे, हिन्दू संगठनों का आविर्भाव इत्यादि।

पूरे उपन्यास को पढ़ते वक़्त पाठकों के मन मे यह जिज्ञासा बानी रहती है कि क्या इस दुनिया का अंत इतना भयावह होगा.....। पूरे नॉवेल को पढ़ते वक़्त पाठक के दिलो-दिमाग़ में यही सवाल चक्रमण करता रहता है। बहरहाल एक 'थ्रिल' से जूझने के बाद उपन्यास का सुखद समापन होता है। हिना को अस्पताल पहुँचाया जाता है, जहाँ उसे बेटा होता है। लेकिन वही एक सवाल कि इस दुनिया में क्या धर्मों का आपसी झगड़ा यूँ ही चलता रहेगा, धर्म इसी तरह दुनिया की ख़ूबसूरती को कब तक छलनी करता रहेगा, क्या अब गाँधी-दाराशुकोह और तो और रामेश्वर (उपन्यास का मुख्य किरदार) अब नहीं आयेंगे..........? लेखक इस हताशा के दौर में भी एक उम्मीदों की रोशनी बिखेरता है और कहता है कि ..."जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था, वो गुनहगार चले गए" कहना जल्दबाज़ी होगी। लेखक बड़े शालीनता से इस ग़ज़ल को कहने वाले शायर फ़ैज़ साहब से माफ़ी माँगते हुए कहता है उन गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई। अभी यह कहना ठीक नहीं होगा कि वो चले गए। बहुत सारे लोगों के रूप में अभी वो लोग बाक़ी हैं और आने वाले समय में भी बाक़ी रहेंगे। ऐसे गुनाहगार अभी ज़िंदा हैं जिनके दम पर इंसानियत चल रही है, धर्मों का ख़ूबसूरत रूप ज़िंदा है। उपन्यास के कई पात्रों जैसे, भारत यादव, विकास परमार, वरुण कुमार, शाहनवाज़ के रूप में इश्क़ का जुर्म करने वाले और उस जुर्म पर नाज़ करने वाले अभी बहुत से गुनाहगार बाक़ी हैं। बाक़ी है उनके अंदर जुनून-ए-रुख़-ए-वफ़ा भी। जो मानते हैं कि असत्य के रास्ते पर मिलने वाली जीत से महत्त्वपूर्ण सत्य के रास्ते पर मिलने वाली पराजय है। कह दीजिए उन लोगों से जो पाँच हज़ार साल से रसन और दार लिए घूम रहे हैं इन गुनाहगारों के पीछे। कह दीजिए कि आने वाले पाँच हज़ार सालों के लिए रसन और दार का इंतज़ाम कर के देख लें। हम मानने वाले नहीं हैं। हमारी नस्ल ख़म्म होने वाली नहीं है। हमारी नस्ल कभी ख़त्म होने वाली नहीं है। नहीं ख़त्म होगी हम गुनाहगारों की नस्ल...... हम पैदा होते रहेंगे.....होते रहेंगे.....होते रहेंगे.......!

पंकज सुबीर का यह उपन्यास अंधेरे में एक रोशनदान की तरह है जो रोशनी बिखेरने का काम करेगा। इतिहास, धर्म और इंसानियत की परतें उखाड़ते हुए अछूते विषय पर वैचारिक लेखन के लिए पंकज सुबीर को अनेकानेक शुभकामनाएँ।

000

पवन कुमार (IAS), ए-753, इंदिरा नगर, लखनऊ 226016 उप्र
ईमेल- singhsdm@gmail.com
मोबाइल- 9412290079